International Journal of Humanities Social Science and Management (IJHSSM)
Volume 2, Issue 4, Sep.-Oct. 2022, pp: 149-151 www.ijhssm.org

हिंदी साहित्य में लोक नाट्य परंपरा

डॉ0 गीता पन्त
असि0 प्रो0, हिन्दी विभाग
इ0 प्रि0 राज0 स्ना0 महि0 वा0 महा0, हल्द्वानी

Date of Submission: 04-09-2022 Date of Acceptance: 19-09-2022

सारांश

लोक शब्द संस्कृत के 'लोक दर्शने' धातु से 'घञ' प्रत्यय लगाकर बना है। इस धातु का अर्थ है ,देखना। भारतीय लोक साहित्यकारों ने लोकनाट्य के मूल शब्द लोक को पारंपरिक अर्थ के रूप में ग्रहण किया है। नाट्य संस्कृत पुरुषवाचक शब्द है , नट 'नर्तने' धातु के 'ष्यम्' प्रत्यय लगाने पर बनता है , जिसका अर्थ है नर्तन अभिनय कला , स्वांग तथा अनुकरणात्मक अभिनय। नाट्य शास्त्र में नाटक की उत्पत्ति नट धातु से मानी गई है । लोकनाट्य को जानने से पूर्व लोकसा हित्य को जानना अति आवश्यक है। लोक जीवन के संस्कार ही लोकनाट्य के स्रोत होते हैं। यदि हम लोक साहित्य की दृष्टि से देखें तो भारतीय लोक साहित्य अत्यधिक समृद्ध है । इसके अंतर्गत जितने भी लोकनाट्य हैं उनका भी कहीं ना कहीं महत्वपूर्ण स्थान है। यदि हम देखें तो भारत की समृद्ध नाट्य परंपरा को जीवित रखने में एवं एक मजबूत आधार देने में लोकनाट्य का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। जनमानस की स्वाभाविक अभिव्यक्ति इन सभी नाट्यशास्त्रों को एकता के सूत्र में जोड़ती है।

परिचय

आचार्य भरतमुनि ने पंचम वेद के रूप में प्रतिष्ठा पाये हुए **'नाट्यषास्त्र'** में नाटक को इस प्रकार परिभाषित किया है।

'लोक सिंद्ध भवेत्, सिद्ध नाट्यम् लोकात्मक'

अर्थात् लोक प्रवृत्तियां जिसमें ओत–प्रोत हैं अथवा लोकात्मक जो वस्तु अभिनेय है वह नाट्य है,

यानि शास्त्राणि में धर्मा, यानि षिल्पानि या क्रियाः
लोक धर्म प्रवृत्तानि, नाट्यमित्य भिसंज्ञितम्।

अर्थात् जो भी शास्त्र धर्म या शिल्प क्रिया, लोक धर्म को लेकर प्रवृत्त होती है वह नाट्य है। भरतमुनि का यह दृढ़ विश्वास था कि नाट्य है ही लोक की वस्तु। [1]

लोक शब्द संस्कृत के 'लोक दर्शने' धातु में 'घञ' प्रत्यय लागाकर बना है। इस धातु का अर्थ है 'देखना', इस प्रकार वह समस्त जन जो इस कार्य को करते हैं, लोक कहलाता है। भारतीय लोक साहित्यिकों ने लोकनाट्य के मूल शब्द 'लोक' को फोक शब्द के पारम्परिक अर्थ को ग्रहण किया है। फोक के भी दो अर्थ हैं– व्यापक तथा संकुचित, संकुचित अर्थ में शब्द से असंस्कृत व गूढ़ समाज का बोध होता हे, तथा व्यापक अर्थ में वह सुसंस्कृत लोगों का परिचायक है। [2]

नाट्य संस्कृत पुरूषवाचक शब्द, यह शब्द है। नट् नर्तने धातु के 'ष्यम्' प्रत्यय लगाने पर बनता है, जिसका अर्थ है– नर्तन्, अभिनय कला, अभिनेता की वेशभूषा, स्वांग तथा अनुकरणात्मक अभिनय नाट्शास्त्र में नाट्य की उत्पत्ति 'नट्' धातु से मानी गयी है, जहाँ पात्र अपने स्वभाव या स्वरूप को त्यागकर परभाव ग्रहण करे तो यह नाट्य या रूप हो जाता है। नाटक रूपक का एक महत्वपूर्ण प्रकार है। [3]

लोक का चिरकालीन अर्थ, समस्त जनसमुदाय और जनजीव सहित समस्त समाज है। लोक का शाब्दिक अर्थ उस जनसमूह से है, जिसमें धर्म, समाज, संस्कृति के संस्कार विद्यमान होते हैं। [4]

लोकनाट्य से पूर्व लोक शब्द का अर्थ जानना आवश्यक था क्योंकि लोकनाट्य लोक तथा नाट्य इन दो शब्दों के मेल से मिलकर बना है, लोकवाङ्मय की समस्त विधाओं में लोकनाट्यों का अति महत्वपूर्ण स्थान है, लोकनाट्य सामाजिक प्रतिभा की उपज होते हैं, भारतीय लोकनाट्यों के लिये किसी ने कोई शास्त्र नहीं रचा है। लोकनाट्य सदैव क्षेत्रीय भाषाओं में ही लिखे जाते हैं। जिन लोकनाट्यों में क्षेत्रीय रंग न हो वह लोकनाट्य का स्थान प्राप्त नहीं करते। [5]

लोकनाट्य के सम्बन्ध में विद्वानों द्वारा भिन्न–भिनन मत दिये गये हैं, डा0 श्याम परमार ने लोक

International Journal of Humanities Social Science and Management (IJHSSM)
Volume 2, Issue 4, Sep.-Oct. 2022, pp: 149-151 www.ijhssm.org

नाट्य को परिभाषित करते हुए लिखा है–**''लोकनाट्य से तात्पर्य नाटक के उस रूप से है जिसका सम्बन्ध विषिष्ट षिक्षित समाज से भिन्न सर्वसाधारण के जीवन से हो और जो परम्परा से अपने–अपने क्षेत्र के जनसमुदाय के मनोरंजन का साधन रहा हो''।** [6]

लोक जीवन के संस्कार ही लोकनाट्यों के स्रोत होते हैं। धार्मिक अनुष्ठान, मेले, त्यौहार आदि लोकानुरंजन के ऐसे मूल बिन्दु हैं, जिनसे लोक नाट्य का उद्भव होता है, लोकनाट्यों का यह स्रोत सामूहिक जीवन से बनता है। [7]

सम्पूर्ण भारत के अन्तर्गत लोकनाट्यों के विभिन्न रूप देखे जा सकते हैं। प्रत्येक प्रदेश के अपने लोकनाट्य होते हैं, जिसके अन्तर्गत उस प्रदेश की संस्कृति को स्पष्ट देखा जा सकता है। भारत में भी लोकनाट्यों के कई प्रकार प्रचलित हैं। इस सम्बन्ध में भी विद्वानों में मतभेद हैं। डा0 श्याम परमार ने लोकनाट्यों को दो वर्गों में विभक्त किया है, प्रथम श्रेणी में सामाजिक लघु प्रहसन तथा द्वितीय श्रेणी में अभिनय व गीतिनाट्य। प्रत्येक अंचल में अपनी–अपनी लोककथाएं व लोक गाथायें होती हैं, जिन्हें नाट्य रूप दिया जाता है।[8]

लोक नाट्यों में भरत द्वारा बताये गये अभिनय के चार अंगों आंगिक, वाचिक, आहार्य व सात्विक में से अंग–प्रत्यंगों को लोक नाट्यों ने कभी ज्यों का त्यों नहीं स्वीकारा, जन समुदाय की अभिरूचि के आधार पर लोक नाट्यकारों ने उसमें परिष्कार और विकास किया। लोकनाट्य किसी व्यक्ति विशेष के मन में उत्पन्न हुए भावों के आधार पर नहीं बनाये जाते यह पौराणिक, ऐतिहासिक तथा किंवदन्तियों पर आधारित होते हैं। इन्हीं के आधार पर लोकनाट्यों को श्रृंगारिक रूप प्रदान किया जाता है।

लोकनाट्यों का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग उनकी संवाद दृष्टि, संगीत और नृत्य होता है। पात्र जिस तरह से और जिस लोक–भाषा में संवाद की अदायगी करते हैं, जिन भाव लहरियों में गाते हैं और जिन अंग–भंगिमाओं में उनकी अभिव्यक्ति करते हैं, वे ही दर्शकों के लिये अभीष्ट और आकर्षक का केन्द्र होते हैं। [9]

आधुनिक भारतीय नाटकों को संस्कृत नाट्य से जोड़ने वाली मूल श्रृंखला विविध क्षेत्रीय नाटकों की है, लोकनाट्य परम्परा भारतीय जन–साधारण के बीच संस्कृत नाटकों के चरमोत्कर्ष काल में ही विद्यमान थी। 'नाट्यशास्त्र' में वर्णित लोकधर्मी नाट्य परम्परा में इसका स्पष्ट संकेत मिलता है। ''रामलीला, जात्रा, अंकियानाट, भागवत आदि आधुनिक आंचलिक नाट्य विधाओं का उद्भव श्री जगदीश चन्द्र माथुर नाट्य काल में उपस्थित संगीत–नृत्य–संवाद मिश्रित शैली से मानते हैं। [10]

कलाओं में 'नाट्य' सम्पूर्ण कला है अन्य कलायें आंशिक होती हैं, उसमें समस्त कला रूपों का यथावश्यकता समाहार रहता है। नाट्य जीवनानुवर्ती कला है, जिसमें लोक (जीवन) के सुख–दुःख से उत्पन्न अवस्थाओं का अभिनय रहता है। [11]

लोकनाट्य लोकमानस की अनुकरणमूलक प्रवृत्तियाँ का सहत प्रतिरूप है, मानव जब नागरिक सभ्यता से दूर राजा–रानी के रूप में प्रस्तुत करता है, मुखौटे लगाता है, तब यही अभिनय लोगों के मनोरंजन की स्थायी निधि बन जाता है। लोकनाट्य परम्परा को विकास भी जनमानस के उल्लास को अधिक सबल रूप में व्यक्त करने के लिए हुआ। लोकनाट्य परम्पराओं का विकास लोकभाषाओं से ही हुआ। वर्तमान में भारत में लोकनाट्य का सबसे प्राचीन व प्रचलित रूप 'रासलीला' है।

लोक नाटक लोक चेतना को प्रबुद्ध करने वाले शक्तिशाली माध्यम हैं, लोकनाट्य एक विकासशील प्रक्रिया है, उसमें परिवर्तन स्वतः होता है। अभी तक हमारे लोकनाटकों की पृष्ठभूमि मध्ययुगीन सामाजिकता रही उसमें पौराणिक प्रसंग अधिक है, लेकिन आज गाँव व नगर की सीमाएं गिरती जा रही हैं। मानव स्वभाव नवीनता प्रिय है और वह विविध रूचियाँ व संस्कारों में अधिक रूचि लेता है। यही कारण है कि आज शिष्ट समाज लोक कला के प्रति उदार दृष्टिकोण रखते हैं तथा ग्रामीण व्यक्ति सिनेमा के प्रति अधिक जिज्ञासु प्रतीत होता है। [12]

मनुष्य द्वारा जब अपनी सुख–दुखात्मक अभिव्यक्तियों के लिए भावों का सहारा लिया गया तो उसे किसी न किसी रूप में मंचित किया गया जिससे कि लोकनाट्य का विकास हुआ। गांव व देहातों में जनसामान्य का मनोरंजन करने वाले किसी भी स्थल को लोकमंच कहा जाता है। जिसमें लोकनृत्य व लोकनाटक दिखाये जाते हैं, उदाहरणस्वरूप– मदारी गली के नुक्कड़ पर झोला रखकर बड़े ही नाटकीय ढंग से तमाशा शुरू करता है जिसमें लोग एकत्रित होते हैं और एक मंच बँध जाता है। लोकनृत्य, लोकगीत व लोकनाट्क से सम्बन्धित संस्कार जनसाधारण में लोकधर्मी रूढ़ियों के रूप में प्रवाहमान रहते हैं। इसलिए लोकमंच वह अमर बेल मानी गयी है जो जनसाधारण से रस खींचकर सदैव हरी–भरी रहती है। [13]

यदि हम भारतीय लोक नाट्य परम्परा के अन्तर्गत मालवा, जो कि लोक–साहित्य की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध है, के लोकनाट्य 'माच' की बात करें तो इस लोकनाट्य को उज्जैन में जन्म मिला है। 'माच' शब्द का सम्बन्ध संस्कृत मूल मंच से है। 'माच' के क्षेत्र में उज्जैन में अनेक घराने बने, जिन्होंने अपने–अपने ढंग से 'माच' को नई ऊर्जा या गति दी। 'माच' की उत्सभूमि शिप्रा तट स्थित पुरातन नगरी उज्जैन मानी जाती है। इस लोकनाट्य के खेलों से अभिनय, स्वांग–नकल, प्रदर्शनी, हास–परिहास, चुटकुले व्यंग आदि को बढ़ावा देकर इस शैली को रंगमयता प्रदान की।

माच की शैली का आरम्भकर्ता गुरू गोपालजी को माना जाता है यह मूलतः राजस्थान के रहने वाले थे

International Journal of Humanities Social Science and Management (IJHSSM)
Volume 2, Issue 4, Sep.-Oct. 2022, pp: 149-151 www.ijhssm.org

किन्तु बाद में मालवा में जाकर बस गये, इन्हें यहाँ राजस्थान की तरह ख्याल जैसा कोई नाट्य रूप नहीं मिला तत्पश्चात इन्होंने स्थानीय संगीत और लोककला रूपों के समावेश से 'माच' की शुरूआत की जो कि परम्परा से क्रमशः परिष्कृत व सवंर्धित होता गया। [14]

हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत लोकनाट्य परम्परा व उसके विकास की बात की जाय तो यही कहा जा सकता है कि 'लोकनाट्य' हमारी प्रागैतिहासिक, ऐतिहासिक और परम्परागत रूढ़ियों में वर्णित जीवन पद्धति, जीवन प्रकृति और प्रवृत्ति के स्वरूप को सुनिश्चित करने में सहायक सिद्ध हुए हैं, लोकनाट्य की शैलियों में लचीलापन है, स्वांग, नौटंकी, ख्याल आदि कथानकों व प्रसंगों द्वारा वर्तमान समस्याओं का समावेश होता रहता है, जिससे इसकी प्रासंगिकता और जीवंतता बनी रहती है, लोकनाट्य का अपना रचना विधान है जिसके निरन्तर प्रयोग से ही इसका विकास होना सम्भव हो पाया है। भारत की समृद्ध नाट्य परम्परा की जीवन्तता और निरन्तरता को आधार देने में सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान लोक नाट्यों का ही रहा है। लोकमानस की स्वाभाविक अभिव्यक्ति इन समस्त नाट्य–रूपों को एकसूत्र में जोड़ती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

1. शास्त्री, बाबू लाल शुक्ल 'अनुवादक' (1972) नाट्य शास्त्र आचार्य भरत चौरवम्बा संस्कृत संस्थान वाराणसी पृष्ठ सं0 416
2. बंसल, डा0 परमानंद (2005) हिमांचली लोकनाट्य धाज्जा सांस्कृतिक तथा सांगीतिक अध्ययन, संजय प्रकाशन दिल्ली पृष्ठ सं0–30
3. बंसल, डा0 परमानंद (2005) हिमांचली लोकनाट्य धाज्जा सांस्कृतिक तथा सांगीतिक अध्ययन, संजय प्रकाशन दिल्ली पृष्ठ सं0–41
4. भार्गव, डा0 सत्या (2010) ब्रज संगीत सुगंध, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, पृष्ठ सं0– 11–12
5. परमार, डा0 श्याम (1999) लोकधर्मी नाट्य परम्परा हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, पृष्ठ सं0– 30–31
6. वही पृष्ठ– 257
7. चातक, डा0 गोविन्द (1996) भारतीय लोक संस्कृति का संदर्भ मध्य हिमालय, तक्षशिला प्रकाशन, दिल्ली पृष्ठ सं0– 256–257
8. वही पृष्ठ– 257
9. हनेजा, जयदेव, रंग–साक्षात्कार पृष्ठ–96
10. माथुर, जगदीश चन्द्र, परम्परा शील नाट्य पृष्ठ– 100
11. बंसल, डॉ0 परमानंद (2005) हिमाचली लोकनाट्य धाज्जा सांस्कृतिक तथा सांगीतिक अध्ययन, संजय प्रकाशन, दिल्ली पृष्ठ सं0–41
12. प्रसाद, कमला कलावार्ता पृष्ठ सं0–01
13. तनेजा, जयदेव, हिन्दी रंग दशा और दिशा, पृष्ठ सं0–0126
14. शर्मा शैलेन्द्र कुमार (2008) मालवा का लोक नाट्य माच और अन्य विधाएँ उज्जैन : अंकुर मंच पृष्ठ सं0– 06–18